राम की शक्ति-पूजा

— सूर्यकांत त्रिपाठी निराला

रवि हुआ अस्त; ज्योति के पत्र पर लिखा अमर
रह गया राम-रावण का अपराजेय समर
आज का तीक्ष्ण-शर-विधृत-क्षिप्र-कर, वेग-प्रखर
शतशेल सम्वरणशील, नील नभ-गर्जित-स्वर,
प्रतिपल परिवर्तित व्यूह - भेद-कौशल-समूह -
राक्षस-विरूद्ध-प्रत्यूह, - क्रुद्ध-कपि-विषम-हूह,
विच्छुरित-वह्नि-राजीवनयन-हत-लक्ष्य-बाण,
लोहित लोचन रावण मदमोचन-महीयान,
राघव-लाघव-रावण-वारण-गत-युग्म प्रहर,
उद्धत-लंकापति-मर्दित-कपि-दल-बल-विस्तर,
अनिमेष राम - विश्वजिद्दिव्य-शर-भंग-भाव, -
विद्धांग - बद्ध - कोदण्ड मुष्टि - खर-रूधिर-स्त्राव,
रावण-प्रहार-दुर्वार विकल-वानर-दल-बल, -
मूर्छित - सुग्रीवांगद - भीषण गवाक्ष -गय- नल, -
वारित-सौमित्र-भल्लपति-अगणित-मल्ल-रोध, -
गर्जित-प्रलयाब्धि-क्षुब्ध-हनुमत्-केवल-प्रबोध,
उद्गीरित-वह्नि-भीम-पर्वत-कपि-चतुःप्रहर, -
जानकी-भीरू-उर-आशा-भर, रावण सम्वर।
लौटे युग दल। राक्षस-पद-तल पृथ्वी टलमल,
विंध महोल्लास से बार-बार आकाश विकल।
वानर-वाहिनी खिन्न, लख निज-पति-चरण-चिह्न
चल रही शिविर की ओर स्थविर-दल ज्यों विभिन्न।

प्रशमित हैं वातावरण, नमित-मुख सान्ध्य कमल
लक्ष्मण चिन्ता-पल, पीछे वानर-वीर सकल;
रघुनायक आगे अवनी पर नवनीत-चरण,
श्लथ धनु-गुण है, कटि-बन्ध त्रस्त-तूणीर-धरण,
दृढ़ जटा-मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल
फैला पृष्ठ पर, बाहुओं पर, वृक्ष पर, विपुल
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार;
चमकती दूर ताराएँ त्यों हों कहीं पार।

आये सब शिविर, सानु पर पर्वत के , मन्थर,
सुग्रीव, विभीषण, जाम्बवान आदिक वानर,
सेनापति दल-विशेष के, अंगद, हनूमान,
नल-नील-गवाक्ष, प्रात के रण का समाधान
करने के लिए, फेर वानर-दल आश्रम-स्थल।

बैठे रघुकुल-मणि श्वेत-शिला पर, निर्मल जल
ले आये कर-पद-क्षालनार्थ पटु हनूमान,

अन्य वीर सर के गये तीर सन्ध्या-विधान-
वन्दना ईश की करने को लौटे सत्वर;
सब घेर राम को बैठे आज्ञा को तत्पर;
पीछे लक्ष्मण, सामने विभीषण भल्लधीर, -
सुग्रीव, प्रान्त पर पद-पद्म के महावीर,
यूथपति अन्य जो, यथास्थान हो निर्निमेष
देखते राम का जित-सरोज-मुख-श्याम देश।

है अमानिशा, उगलता गगन घन-अन्धकार;
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन-चार;

अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल;
भूधर ज्यों ध्यान-मग्न; केवल जलती मशाल।
स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर-फिर संशय
रह-रह उठता जग जीवन में रावण जय भय;
जो नहीं हुआ है आज तक हृदय रिपुदम्य-श्रान्त,
एक भी, अयुत-लक्ष में रहा जो दुराक्रान्त,
कल लड़ने को हो रहा विकल वह बार बार,
असमर्थ मानता मन उद्यत हो हार हार।

ऐसे क्षण अन्धकार घन में जैसे विद्युत
जागी पृथ्वी-तनय-कुमारिका-छवि अच्युत
देखते हुए निष्पलक, याद आया उपवन
विदेह का, - प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन
नयनों का- नयनों से गोपन-प्रिय सम्भाषण
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान पतन,
काँपते हुए किसलय, - झरते पराग समुदय, -
गाते खग नव-जीवन-परिचय, तरू मलय-वलय,
ज्योतिः प्रपात स्वर्गीय, - ज्ञात छवि प्रथम स्वीय, -
जानकी-नयन-कमनीय प्रथम कम्पन तुरीय।

सिहरा तन, क्षण भर भूला मन, लहरा समस्त,
हर धनुर्भग को पुनर्वार ज्यों उठा हस्त,
फूटी स्मिति सीता-ध्यान-लीन राम के अधर,
फिर विश्व-विजय-भावना हृदय में आयी भर,
वे आये याद दिव्य शर अगणित मन्त्रपूत, -
फड़का पर नभ को उड़े सकल ज्यों देवदूत,
देखते राम, जल रहे शलभ ज्यों रजनीचर,
ताड़का, सुबाहु, विराध, शिरस्त्रय, दूषण, खर;

आच्छादित किये हुए सम्मुख समग्र नभ को,
ज्योतिर्मय अस्त्र सकल बुझ-बुझकर हुए क्षीण,
पा महानिलय उस तन में क्षण में हुए लीन,
लख शंकाकुल हो गये अतुल-बल शेष-शयन;
खिंच गये दृगों में सीता के राममय नयन;
फिर सुना-हँस रहा अट्टाहास रावण खलखल,
भावित नयनों से सजल गिरे दो मुक्ता-दल।

बैठे मारूति देखते राम-चरणारविन्द-
युग 'अस्ति-नास्ति' के एक गुण-गण-अनिन्द्य,
साधना-मध्य भी साम्य-वामा-कर दक्षिण-पद,
दक्षिण करतल पर वाम चरण, कपिवर, गद्गद्
पा सत्य, सच्चिदानन्द रूप, विश्राम धाम,
जपते सभक्ति अजपा विभक्ति हो राम-नाम।
युग चरणों पर आ पड़े अस्तु वे अश्रु-युगल,
देखा कवि ने, चमके नभ में ज्यों तारादल।
ये नहीं चरण राम के, बने श्यामा के शुभ, -
सोहते मध्य में हीरक युग या दो कौस्तुभ;
टूटा वह तार ध्यान का, स्थिर मन हुआ विकल
सन्दिग्ध भाव की उठी दृष्टि, देखा अविकल
बैठे वे वहीं कमल लोचन, पर सजल नयन,
व्याकुल-व्याकुल कुछ चिर प्रफुल्ल मुख निश्चेतन।

"ये अश्रु राम के" आते ही मन में विचार,
उद्वेग हो उठा शक्ति-खोल सागर अपार,
हो श्वसित पवन उच्छवास पिता पक्ष से तुमुल
एकत्र वक्ष पर बहा वाष्प को उड़ा अतुल,
शत पूर्णावर्त, तरंग-भंग, उठते पहाड़,
जल-राशि राशि-जल पर चढ़ता खाता पछाह,
तोड़ता बन्ध-प्रतिसन्ध धरा हो स्फीत -वक्ष
दिग्विजय-अर्थ प्रतिपल समर्थ बढ़ता समक्ष,
शत-वायु-वेग-बल, डूबा अतल में देश-भाव,
जल-राशि विपुल मध मिला अनिल में महाराव
वज्रांग तेजघन बना पवन को, महाकाश
पहुँचा, एकादश रूद्र क्षुब्ध कर अट्टहास।

रावण-महिमा श्यामा विभावरी, अन्धकार,
यह रूद्र राम-पूजन-प्रताप तेजःप्रसार;
इस ओर शक्ति शिव की जो दशस्कन्ध-पूजित,
उस ओर रूद्रवन्दन जो रघुनन्दन-कूजित;
करने को ग्रस्त समस्त व्योम कपि बढ़ा अटल,
लख महानाश शिव अचल, हुए क्षण भर चंचल;

श्यामा के पद तल भार धरण हर मन्द्रस्वर
बोले – "सम्वरो, देवि, निज तेज, नहीं वानर
यह, नहीं हुआ श्रृंगार-युग्म-गत, महावीर
अर्चना राम की मूर्तिमान अक्षय-शरीर,
चिर ब्रह्मचर्य-रत ये एकादश रूद्र, धन्य,
मर्यादा-पुरूषोत्तम के सर्वोत्तम, अनन्य
लीला-सहचर, दिव्यभावधर, इन पर प्रहार
करने पर होगी देवि, तुम्हारी विषम हार;
विद्या का ले आश्रय इस मन को दो प्रबोध,
झुक जाएगा कपि, निश्चय होगा दूर रोध।"
कह हुए मौन शिव; पतन-तनय में भर विस्मय
सहसा नभ से अंजना-रूप का हुआ उदय;

बोली माता – "तुमने रवि को जब लिया निगल
तब नहीं बोध था तुम्हें; रहे बालक केवल,
यह वही भाव कर रहा तुम्हें व्याकुल रह-रह
यह लज्जा की है बात कि माँ रहती सह-सह;
यह महाकाश, है जहाँ वास शिव का निर्मल-
पूजते जिन्हें श्रीराम उसे ग्रसने को चल
क्या नहीं कर रहे तुम अनर्थ? सोचो मन में;
क्या दी आज्ञा ऐसी कुछ श्री रघुनन्दन ने?
तुम सेवक हो, छोड़कर धर्म कर रहे कार्य –
क्या असम्भाव्य हो यह राघव के लिये धार्य?"
कपि हुए नम्र, क्षण में माता-छवि हुई लीन,
उतरे धीरे-धीरे गह प्रभुपद हुए दीन।

राम का विषण्णानन देखते हुए कुछ क्षण;
"हे सखा" विभीषण बोले "आज प्रसन्न-वदन
वह नहीं देखकर जिसे समग्र वीर-वानर-
भल्लुक विगत-श्रम हो पाते जीवन निर्जर;
रघुवीर, तीर सब वही तूण में हैं रक्षित,
है वही पक्ष, रण-कुशल-हस्त, बल वही अमित;
हैं वही सुमित्रानन्दन मेघनाद-जित् रण,
हैं वही भल्लपति, वानरेन्द्र सुग्रीव प्रमन,
ताराकुमार भी वही महाबल श्वेत धीर,
अप्रतिभट वही एक अर्बुद-सम महावीर
हैं वही दक्ष सेनानायक है वही समर,
फिर कैसे असमय हुआ उदय भाव-प्रहर!
रघुकुल-गौरव लघु हुए जा रहे तुम इस क्षण,
तुम फेर रहे हो पीठ, हो रहा हो जब जय रण।

कितना श्रम हुआ व्यर्थ, आया जब मिलन-समय,

तुम खींच रहे हो हस्त जानकी से निर्दय!
रावण? रावण – लम्पट, खल कल्मय–गताचार,
जिसने हित कहते किया मुझे पाद–प्रहार,
बैठा उपवन में देगा दुख सीता को फिर,
कहता रण की जय–कथा पारिषद–दल से घिर,
सुनता वसन्त में उपवन में कल–कूजित–पिक
मैं बना किन्तु लंकापति, धिक्, राघव, धिक्–धिक्?'

सब सभा रही निस्तब्ध; राम के स्मित नयन
छोड़ते हुए शीतल प्रकाश देखते विमन,
जैसे ओजस्वी शब्दों का जो था प्रभाव
उससे न इन्हें कुछ चाव, न हो कोई दुराव,
ज्यों ही वे शब्दमात्र – मैत्री की समानुरक्ति,
पर जहाँ गहन भाव के ग्रहण की नहीं शक्ति।

कुछ क्षण तक रहकर मौन सहज निज कोमल स्वर,
बोले रघुमणि – "मित्रवर, विजया होगी न, समर
यह नहीं रहा नर–वानर का राक्षस से रण,
उतरी पा महाशक्ति रावण से आमन्त्रण;
अन्याय जिधर, हैं उधर शक्ति।" कहते छल–छल
हो गये नयन, कुछ बूँद पुनः ढलके दृगजल,
रूक गया कण्ठ, चमक लक्ष्मण तेजः प्रचण्ड
धँस गया धरा में कपि गह–युग–पद, मसक दण्ड
स्थिर जाम्बवान, – समझते हुए ज्यों सकल भाव,
व्याकुल सुग्रीव, – हुआ उर में ज्यों विषम घाव,
निश्चित–सा करते हुए विभीषण कार्यक्रम
मौन में रहा यों स्पन्दित वातावरण विषम।

राम की शक्ति–पूजा (3)

— सूर्यकांत त्रिपाठी निराला

निज सहज रूप में संपत हो जानकी–प्राण
बोले – "आया न समझ में यह दैवी विधान;
रावण, अधर्मरत भी, अपना, मैं हुआ अपर, –
यह रहा, शक्ति का खेल समर, शंकर, शंकर!
करता मैं योजित बार–बार शर–निकर निशित,
हो सकती जिनसे यह संसृति सम्पूर्ण विजित,
जो तेजःपुंज, सृष्टि की रक्षा का विचार–
हैं जिसमें निहित पतन घातक संस्कृति अपार –

शत–शुद्धि–बोध – सूक्ष्मतिसूक्ष्म मन का विवेक,
जिनमें है क्षात्र–धर्म का धृत पूर्णाभिषेक,
जो हुए प्रजापतियों से संयम से रक्षित,
वे शर हो गये आज रण में श्रीहत, खण्डित!

देखा है महाशक्ति रावण को लिये अंक,
लांछन को ले जैसे शशांक नभ में अशंक;
हत मन्त्र-पूत शर सम्वृत करतीं बार-बार,
निष्फल होते लक्ष्य पर क्षिप्र वार पर वार।
विचलित लख कपिदल क्रुद्ध, युद्ध को मैं ज्यों-ज्यों,
झक-झक झलकती वह्नि वामा के दृग त्यों-त्यों;
पश्चात्, देखने लगीं मुझे बँध गये हस्त,
फिर खिंचा न धनु, मुक्त ज्यों बँधा मैं, हुआ त्रस्त!"

कह हुए भानु-कुल-भूषण वहाँ मौन क्षण भर,
बोले विश्वस्त कण्ठ से जाम्बवान, "रघुवर,
विचलित होने का नहीं देखता मैं कारण,
हे पुरूषसिंह, तुम भी यह शक्ति करो धारण,
आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर,

तुम वरो विजय संयत प्राणों से प्राणों पर,
रावण अशुद्ध होकर भी यदि कर सका त्रस्त
तो निश्चय तुम हो सिद्ध करोगे उसे ध्वस्त;
शक्ति की करे मौलिक कल्पना; करो पूजन,
छोड़ दो समर जब तक न सिद्ध हो, रघुनन्दन!
तब तक लक्ष्मण हैं महावाहिनी के नायक
मध्य मार्ग में अंगद, दक्षिण-श्वेत सहायक,
मैं, भल्ल सैन्य; हैं वाम-पार्श्व में हनुमान,
नल, नील और छोटे कपिगण - उनके प्रधान;
सुग्रीव, विभीषण, अन्य यूथपति यथासमय
आयेंगे रक्षा हेतु जहाँ भी होगा भय।"

खिल गयी सभा। "उत्तम निश्चय यह, भल्लनाथ!"
कह दिया ऋक्ष को मान राम ने झुका माथ।
हो गये ध्यान में लीन पुनः करते विचार,
देखते सकल - तन पुलकित होता बार-बार।

कुछ समय अनन्तर इन्दीवर-निंदित लोचन
खुल गये, रहा निष्पलक भाव में मज्जित मन,
बोले आवेग-रहित स्वर में विश्वास-स्थित -
"मातः, दशभुजा, विश्व-ज्योति; मैं हूँ आश्रित;
हो विद्ध शक्ति से है महिषासुर खल मर्दित;
जनरंजन-चरण-कमल-तल, धन्य सिंह गर्जित!
यह, यह मेरा प्रतीक मातः समझा इंगित;
मैं सिंह, इसी भाव से करूँगा अभिनन्दित।"

कुछ समय तक स्तब्ध हो रहे राम छवि में निमग्न,

फिर खोले पलक–कमल–ज्योतिर्दल ध्यान–लग्न;

हैं देख रहे मन्त्री, सेनापति, वीरासन
बैठे उमड़ते हुए, राघव का स्मित आनन।
बोले भावस्थ चन्द्र–मुख निन्दित रामचन्द्र
प्राणों में पावन कम्पन भर स्वर–मेघमन्द्र –
"देखो, बन्धुवर, सामने स्थिर जो वह भूधर
शोभित शत–हरित–गुल्म–तृण से श्यामल सुन्दर,
पार्वती कल्पना हैं इसकी मकरन्द–विन्दु;
गरजता वरण–प्रान्त पर सिंह वह, नहीं सिन्धु,

दशदिक समस्त हैं हस्त, और देखो ऊपर,
अम्बर में हुए दिगम्बर अर्चित शशि–शेखर;

लख महाभाव–मंगल पद–तल धँस रहा गर्व –
मानव के मन का असुर मन्द हो रहा खर्व।"

फिर मधुर दृष्टि से प्रिय कपि को खींचते हुए
बोले प्रियतर स्वर में अन्तर सींचते हुए –
"चाहिए हमें एक सौ आठ, कपि, इन्दीवर,
कम–से–कम, अधिक और हों, अधिक और सुन्दर,
जाओ देवीदह, उषःकाल होते सत्वर
तोड़ो; लाओ वे कमल, लौटकर लड़ो समर।"
अवगत हो जाम्बवान से पथ, दूरत्व, स्थान,
प्रभु–पद रज सिर धर चले हर्ष भर हनूमान।
राघव ने विदा किया सबको जानकर समय,
सब चले सदय राम की सोचते हुए विजय।
निशि हुई विगत ः नभ के ललाट पर प्रथमकिरण
फूटी रघुनन्दन के दृग महिमा–ज्योति–हिरण;

हैं नहीं शरासन आज हस्त–तूणीर स्कन्ध
वह नहीं सोहता निविड़–जटा–दृढ़ मुकुट–वन्ध;
सुन पड़ता सिंहनाद रण–कोलाहल अपार,
उमड़ता नहीं मन, स्तब्ध सुधी हैं ध्यान धार;
पूजोपरान्त जपते दुर्गा, दशभुजा नाम,
मन करते मनन नामों के गुणग्राम;
बीता वह दिवस, हुआ मन स्थिर इष्ट के चरण
गहन से गहनतर होने लगा समाराधन।
क्रम–क्रम से हुए पार राघव के पंच दिवस,

चक्र से चक्र मन बढ़ता गया ऊर्ध्व निरलस,
कर–जप पूरा कर एक चढ़ाते इन्दीवर

निज पुरश्चरण इस भाँति रहे हैं पूरा कर।
चढ़ षष्ठ दिवस आज्ञा पर हुआ समासित मन,
प्रतिजप से खिंच-खिंच होने लगा महाकर्षण,
संचित त्रिकुटी पर ध्यान द्विदल देवी-पद पर,
जप के स्वर लगा काँपने थर-थर-थर अम्बर;
दो दिन निःस्पन्द एक आसन पर रहे राम,
अर्पित करते इन्दीवर जपते हुए नाम।
आठवाँ दिवस मन ध्यान-युक्त चढ़ता ऊपर
कर गया अतिक्रम ब्रह्मा-हरि-शंकर का स्तर,
हो गया विजित ब्रह्माण्ड पूर्ण, देवता स्तब्ध;
हो गये दग्ध जीवन के तप के समारब्ध;
रह गया एक इन्दीवर, मन देखता पार
प्रायः करने को हुआ दुर्ग जो सहस्रार,
द्विप्रहर, रात्रि, साकार हुई दुर्गा छिपकर
हँस उठा ले गई पूजा का प्रिय इन्दीवर।

यह अन्तिम जप, ध्यान में देखते चरण-युगल
राम ने बढ़ाया कर लेने को नीलकमल;
कुछ लगा न हाथ, हुआ सहसा स्थिर मन चंचल;
ध्यान की भूमि से उतरे, खोले पलक विमल;
देखा, वहा रिक्त स्थान, यह जप का पूर्ण समय
आसन छोड़ा असिद्धि, भर गये नयन-द्वय; -
"धिक् जीवन को जो पाता ही आया है विरोध,
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध
जानकी! हाय उद्धार प्रिया का हो न सका;
वह एक और मन रहा राम का जो न थका;
जो नहीं जानता दैन्य, नहीं जानता विनय,
कर गया भेद वह मायावरण प्राप्त कर जय,

बुद्धि के दुर्ग पहुँचा विद्युत-गति हतचेतन
राम में जगी स्मृति हुए सजग पा भाव प्रमन।
"यह है उपाय" , कह उठे राम ज्यों मन्द्रित घन-
"कहती थीं माता मुझे सदा राजीव-नयन।
दो नील कमल हैं शेष अभी, यह पुरश्चरण
पूरा करता हूँ देकर मात एक नयन।"
कहकर देखा तूणीर ब्रह्मशर रहा झलक,
ले लिया हस्त लक-लक करता वह महाफलक;
ले अस्त्र थाम कर, दक्षिण कर दक्षिण लोचन
ले अर्पित करने को उद्यत हो गये सुमन
जिस क्षण बँध गया वेधने को दृग दृढ़ निश्चय,
काँपा ब्रह्माण्ड, हुआ देवी का त्वरित उदय -

''साधु, साधु, साधक धीर, धर्म-धन-धान्य राम!''
कह, लिया भगवती ने राघव का हस्त थाम
देखा राम ने, सामने श्री दुर्गा, भास्कर
वामपद असुर स्कन्ध पर, रहा दक्षिण हरि पर,
ज्योतिर्मय रूप, हस्त दश विविध-अस्त्र सज्जित,
मन्द स्मित मुख, लख हुई विश्व को श्री लज्जित
हैं दक्षिण में लक्ष्मी, सरस्वती वाम भाग,
दक्षिण गणेश, कार्तिक बायें रण-रंग-राग,
मस्तक पर शंकर! पदपद्मों पर श्रद्धाभर
श्री राघव हुए प्रणत मन्द-स्वर-वन्दन कर।

''होगी जय, होगी जय, हे पुरूषोत्तम नवीन।''
कह महाशक्ति राम के बदन में हुई-लीन।

****
****
****